माननीय न्यायमूर्ति महेश ग्रोवर के समक्ष,

हरभजन सिंह @ भज्जी — याचिकाकर्ता

बनाम

अरविंद ठाकुर और अन्य — उत्तरदाता

2009 का Crl. M. No. 14887 / M

1 सितंबर, 2009

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 298 और 120-बी- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482—टीवी पर धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का आरोप कार्यक्रम-याचिकाकर्ता का सम्मन भारतीय दंड संहिता की धारा 298 और 120-बी के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए - याचिकाकर्ता माफी मांग रहा है - धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति -कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए- याचिकाकर्ता का कृत्य किसी स्थिति का व्यंग्यपूर्ण प्रतीत होता है या किसी अपराध के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए और इसे उसी तरीके से स्वीकार किया जाना चाहिए जिस तरीके से इसे प्रस्तुत करने की मांग की गई थी, न कि इसके लिए किसी आपराधिकता का आरोप लगाया गया था। -किसी भी स्थिति में किसी भी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का कोई जानबूझकर इरादा नहीं है याचिकाकर्ता ने केवल एक कार्यक्रम में अभिनय किया, जिसकी स्क्रिप्ट किसी और ने लिखी थी - आईपीसी की धारा 298 की सामग्री शिकायत से संतुष्ट नहीं होती है और यह झूठ है -मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता और अन्य को ऐसे आधारहीन आरोपों पर नहीं बुलाना चाहिए था।

यह निर्धारित किया गया कि एक बहुलवादी समाज विचार के सर्व-समावेशी विकास पर विचार करता है और जिसमें उसका प्रगतिशील विकास शामिल होता है चाहे वह बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक हो। ऐसी प्रक्रिया जो कभी स्थिर नहीं होती और हमेशा प्रवाह की स्थिति में रहती है, आवश्यक रूप से निरंतर विच्छेदन और प्रसार को आमंत्रित करती है। यह उत्तरोत्तर और अपक्षयी रूप से बढ़ सकता है और इसके बोधक द्वारा उचित रूप से इसका वर्णन किया जा सकता है।

लेकिन, यह भी बौद्धिक प्रसार से अलग है। विचार की ऐसी गतिशीलता को आवश्यक रूप से समाज के सभी घटकों की संवेदनशीलता को ध्यान में रखना होगा लेकिन अति-संवेदनशीलता को नहीं क्योंकि यदि इसकी अनुमति दी जाती है तो यह केवल एक अपक्षयी प्रक्रिया को सक्रिय करने की संभावना पैदा करेगा और अन्यथा विचार की सहज गतिशीलता को एक अशांत रंग प्रदान करेगा । इस प्रकार, विचार की तीव्र सहिष्णुता और पारस्परिक सम्मान और सम्मान का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण होना चाहिए। भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(ए) विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की स्पष्ट अभिव्यक्ति है और यह एक प्रगतिशील समाज के सार को रेखांकित करता है जिसके सिद्धांत बहुलवाद पर आधारित हैं और जो विकास के माध्यम के रूप में बुद्धिमान विचार के विकास को महत्व देता है।जिस कृत्य के लिए यहां याचिकाकर्ता को जिम्मेदार ठहराया गया है, वह अधिक से अधिक किसी स्थिति का व्यंग्य या पैरोडी या धोखा लग सकता है और इसे उसी तरीके से माना जाना चाहिए और स्वीकार किया जाना चाहिए जिस तरह से इसे प्रस्तुत करने की मांग की गई थी और इसके लिए किसी आपराधिकता को जिम्मेदार नही ठाहराना चाहिए।

(पैरा 27 और 28)

आगे कहा गया कि यदि याचिकाकर्ता के कृत्य को देखा जाए, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसने किसी भी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के जानबूझकर इरादे से काम किया था और किसी भी स्थिति में, वह केवल एक कार्यक्रम में अभिनय कर रहा था जो कि किसी और ने लिखा है, जिसका शिकायत में कोई उल्लेख नहीं है। इसलिए, शिकायत को पढ़ने से यह नहीं पता चलता कि आईपीसी की धारा 298 की सामग्री इसमें शामिल है व संतुष्ट हैं। उत्तरदाताओं द्वारा दायर की गई शिकायत तुच्छ है और मजिस्ट्रेट को ऐसे आधारहीन आरोपों पर याचिकाकर्ताओं और अन्य लोगों को नहीं बुलाना चाहिए था।

(पैरा 31और 33)

अक्षय भान, अधिवक्ता, याचिकाकर्ता के लिए

सौरभ कौशिक, अधिवक्ता, उत्तरदाताओं के लिए

महेश ग्रोवर, जे.

1. यह 10 अक्टूबर, 2008 की आपराधिक शिकायत (अनुलग्नक पी-1) और उससे उत्पन्न होने वाली सभी परिणामी कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में, 'सीआरपीसी') की धारा 482 के तहत एक याचिका है।

2. शिकायतकर्ता-प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता और दो अन्य के खिलाफ परिशिष्ट पी-1 में शिकायत दर्ज की थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपी व्यक्तियों ने उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाई है और इस तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 298 और 120-बी ,1860 (संक्षिप्तता के लिए, 'आई.पी.सी.') के तहत दंडनीय अपराध किए हैं।

3. याचिकाकर्ता और अन्य लोगों की कार्रवाई, जिसने उत्तरदाताओं की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के आरोप को आमंत्रित किया था, एक टेलीविजन कार्यक्रम में शिकायत में याचिकाकर्ता और मोना सिंह-आरोपी नंबर 2 का कृत्य था, जहां वह स्पष्ट रूप से रावण के रूप में कपड़े पहने हुए था। मोना सिंह, जिन्होंने सीता के रूप में कपड़े पहने थे और उन्हें निम्नलिखित शब्द बोलते हुए देखा गया था:-"ओह माय लव जबसे तुजको देखा आदि. ओह माय लव जबसे तुजको देखा आदि।"

4. उक्त अनुक्रम अभियुक्त न. 3,कलर टेलीविजन चैनल पर "एक खिलाड़ी एक हसीना" नामक कार्यक्रम में प्रसारित किया गया था। आगे यह भी आरोप लगाया गया कि शिकायतकर्ताओं को उनके कुछ परिचितों से एक टेलीफोन कॉल आया जिसमें उन्हें प्रसारित किए जा रहे कार्यक्रम के बारे में बताया गया जिसे उन्होंने देखा और इससे उनकी धार्मिक भावनाएं आहत हुईं। शिकायतकर्ता हिंदू धर्म को मानते है।

5. शिकायत के अनुसरण में, न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, चंडीगढ़ (इसके बाद 'मजिस्ट्रेट' के रूप में वर्णित) ने उत्तरदाताओं के प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज किए और प्रकरण को कॉम्पैक्ट डिस्क पर भी देखा, जो उनके सामने प्रदर्शित किया गया था। इसके बाद, मजिस्ट्रेट ने 5 फरवरी, 2009 के अपने आदेश के तहत आईपीसी की धारा 298 और 120-बी के तहत दंडनीय अपराध के कथित कमीशन के लिए याचिकाकर्ता और आरोपी नंबर 2 और 3 को बुलाने का फैसला किया।

6. इसके परिणामस्वरूप वर्तमान याचिका दायर की गई और 7 जून, 2009 को, इस न्यायालय ने उसमें दिए गए कथनों और अनुबंध पी-6 की सामग्री पर ध्यान देने के बाद, उत्तरदाताओं को प्रस्ताव का नोटिस जारी किया और शिकायत के आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी।

7. दोनों प्रतिवादियों की ओर से जवाब दाखिल किया गया। यह कहा गया है कि मजिस्ट्रेट ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों की सराहना करने और कार्यक्रम की कॉम्पैक्ट डिस्क को देखने के बाद सम्मन आदेश पारित किया है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि आईपीसी की धारा 298 और 120-बी के तहत शिकायत को पढ़ने के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अपराध का मामला बनता नहीं है और अन्यथा भी, उसका किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का कोई इरादा नहीं था और परिणामस्वरूप उसने माफी भी जारी की थी जिसे उत्तरदाताओं ने स्वीकार कर लिया था। उन्होंने 20 अक्टूबर, 2008 के टाइम्स ऑफ इंडिया में छपी खबरों का हवाला दिया है, जिसकी एक प्रति अनुलग्नक पी-6 के रूप में रिकॉर्ड में है।

9. वहीं दूसरी ओर, उत्तरदाताओं के वकील श्री अरविंद कश्यप उपस्थित नहीं हुए और श्री सौरभ कौशिक, वकील उनकी ओर से उपस्थित हुए लेकिन उन्होंने उत्तरदाताओं की ओर से किसी भी दलील को संबोधित नहीं किया।

10. मैंने प्रतिद्वंद्वी विवादों पर सोच-समझकर विचार किया है और पूरी फ़ाइल का अध्ययन किया है।

11.दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत इस न्यायालय की शक्तियाँ का प्रयोग कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अंतिम न्याय सुनिश्चित करने के लिए किया जा सकता है। धारा 482. यहाँ से निकाला गया है:- "482. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की बचत - इस संहिता में कुछ भी ऐसे आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा जो इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने या दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक हो सकते हैं। न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया या अन्यथा।

12.**मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य , (1)** [1]में उनके आधिपत्य ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या उच्च न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक अंतर्वर्ती आदेश को रद्द करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है।सीआरपीसी की धारा 397(2) के प्रावधानों पर भी विचार किया गया, जो एक अंतरिम आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण पर रोक लगाता है। यह माना गया कि किसी अपील, जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्ति पर रोक लगाने का उद्देश्य अंततः मामलों का शीघ्र निपटान करना है। उनके समक्ष मामले की परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग के लिए उनके आधिपत्य द्वारा निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए थे:-

1. यदि पीड़ित पक्ष की शिकायत के निवारण के लिए संहिता में कोई विशिष्ट प्रावधान हैं तो शक्ति का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए।

2.किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए इसका बहुत संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए।

3.इसका प्रयोग संहिता के किसी भी अन्य प्रावधान में दिए गए कानून के स्पष्ट निषेध के विपरीत नहीं किया जाना चाहिए।

13.**माधवराव जीवाजी राव और अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे और अन्य(2)** [2]के मामले में, फैसले के पैराग्राफ 8 में उनके आधिपत्य को इस प्रकार देखा गया:-

"8. श्री जेठमलानी ने प्रस्तुत किया है, जैसा कि हम पहले ही नोट कर चुके हैं, कि विश्वास के उल्लंघन का मामला नागरिक गलती और आपराधिक अपराध दोनों है। ऐसी कुछ स्थितियाँ होंगी जहाँ यह मुख्य रूप से एक नागरिक गलती होगी और आपराधिक अपराध की श्रेणी में आ भी सकती है और नहीं भी। हमारा विचार है कि यह मामला उस प्रकार का है, जहां यदि तथ्य हों, तो यह एक नागरिक गलती हो सकती है और आपराधिक अपराधों की सामग्री वांछित हो सकती है। पक्षों के वकीलों द्वारा उठाए गए संबंधित रुख के समर्थन में हमारे सामने कई निर्णयों का हवाला दिया गया जिनका उल्लेख करना अनावश्यक है।अपीलों की सुनवाई के दौरान, डॉ. सिंघवी ने स्पष्ट किया कि माधवी किरायेदारी में किसी भी हित का दावा नहीं करती है। इस स्थिति में, हम यह मानने के इच्छुक हैं कि आपराधिक मामला जारी नहीं रखा जाना चाहिए।

---

(1) ए.आइ.आर 1978 एस.सी 47

(2) ए.आइ.आर 1988 एस.सी 709

14. **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (3)** [3]में सर्वोच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों की व्याख्या करते हुए कुछ पैरामीटर, सिद्धांत और दिशानिर्देश निर्धारित किए, जो इस प्रकार हैं:—

" अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में जिस संहिता को हमने ऊपर निकाला और पुन: प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं, जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है।हालांकि यह हो सकता है कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज़्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

1. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी प्रविष्टि में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।
2. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्री में आरोप, यदि कोई हो, लगाए गए हैं जो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश का या संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हुए किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा न करें।
3. जहां एफ.आई.आर. या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं
4. जहां , एफ.आई.आर. में लगे आरोप एक संज्ञेय अपराध नहीं बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध है व मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत माना गया है।

---

(3) 1992 Suppl. (1) एस.सी.सी 336

5. जहां एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोप या शिकायतें इतनी बेतुकी और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।
6. जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था के लिए और कार्यवाही को जारी रखने के लिए स्पष्ट कानूनी बाधा मौजूद है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।
7. जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में मुख्य रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए व निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

हम इस आशय की चेतावनी भी देते हैं कि किसी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में।एफ.आई.आर. व शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच शुरू करना अदालत के लिए उचित नहीं होगा। असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां अदालत को उसकी इच्छा या इच्छा के अनुसार कार्य करने का मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।"

15. **एम.एन. दामिनी बनाम एस.के. सिन्हा और अन्य (सुप्रा**),के मामले में ,जिस पर प्रतिवादी द्वारा भरोसा किया गया था, सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य ने, माधवराव जीवाजी राव सिंधिया के मामले (सुप्रा) के फैसले पर ध्यान देते हुए निम्नानुसार देखा: -

"इस प्रकार, उक्त निर्णय उस मामले के तथ्यों पर था, जिसमें अपराध की प्रकृति, पार्टियों के बीच संबंध, ट्रस्ट डीड और किरायेदारी के निर्माण के बाद पत्राचार सहित विभिन्न कारकों को ध्यान में रखा गया था। उच्च न्यायालय ने पैरा 7 को अलग से पढ़ा है यदि पैरा 7 को ध्यान से पढ़ा जाए तो दो पहलुओं को संतुष्ट किया जाना चाहिए: (1) क्या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप, प्रथम दृष्टया अपराध स्थापित करते हैं, और (2) क्या अनुमति देना समीचीन और न्याय के हित में है अभियोजन जारी रहेगा..." (जोर दिया गया)

16.**बी.एस. जोशी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (4)** [4] सुप्रीम कोर्ट के उनके आधिपत्य ने एक आपराधिक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से एक अपवाद बनाया है, जिसका मूल एक वैवाहिक विवाद है जिसमें समझौता किया गया था।बहुमत निर्णय के पैराग्राफ 12 में इसे निम्नानुसार देखा गया: -

" संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए,न्यायालय ने दिए गए मामलों में आपराधिक कार्यवाही को उन परिस्थितियों में रद्द कर दिया है जहाँ यह महसूस किया गया कि किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा अन्याय के सिरों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक था।इन निर्णयों में आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का मूल्यांकन शामिल होगा और यह न्यायालय वैधानिक प्रावधानों की व्याख्या करते समय संहिता के 320(1) और (2) में सूचीबद्ध मामलों के अलावा अन्य मामलों में अपराधों के शमन की शक्तियों का विस्तार करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी नहीं ले सकता है। हालांकि यह सच है कि सहमति से न्याय पाने की दृष्टि से सुलह प्रक्रिया को अमल में लाना हर किसी का प्रयास होना चाहिए, फिर भी इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संहिता की धारा 320 के दायरे को बढ़ाना होगा। विधायी अधिनियमन के क्षेत्र में वांछनीय होते हुए भी ऐसा विस्तार उच्च न्यायालय के स्तर पर वैधानिक व्याख्या के दायरे से बाहर होगा। इस मामले में इस न्यायालय के पास आपराधिक न्याय प्रणाली में समझौते के दायरे को बढ़ाने की उपयोगिता का आकलन करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है क्योंकि अधिक धन और बाहुबल वाले व्यक्तियों द्वारा इसका दुरुपयोग किए जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। यह इस कारण से है कि हम सामान्य रूप से न्याय के हित के दायरे का विस्तार नहीं करने के लिए बाध्य महसूस करते हैं क्योंकि उस पर अंधाधुंध और अनियंत्रित निर्भरता, कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग में समाप्त हो सकती है जो कि लक्ष्यों में से एक है, जो कि धारा 482 के प्रवर्तक हैं। संहिता के, प्राप्त करने का प्रयास करें। यह सुनिश्चित करने के लिए कि पक्षों के बीच पूर्ण न्याय हो, प्रत्येक मामले में संतुलन बनाना होगा और इसे प्राप्त करने के लिए यह पता लगाने के लिए प्रत्येक व्यक्तिगत मामले की जांच करनी होगी कि क्या यह संहिता की धारा 482 में शामिल किसी भी प्रावधान पर लागू होता है ताकि उपरोक्त शक्ति के प्रयोग में या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी पक्ष को राहत देने के लिए न्यायालय को प्रेरित किया जा सके।इसलिए, हम "कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग" और

---

4) 2003 (2) आर.सी.आर. (सी.आर.एल.) 888 (एस.सी.)

"न्याय के हित में" शब्दों को ध्यान में रखते हुए, संहिता की धारा 482 के तहत प्रदान किए गए न्यायिक हस्तक्षेप के दायरे को निर्धारित करने के लिए कोई अभ्यास शुरू नहीं करना चाहेंगे।

17. जैसा कि ऊपर देखा गया, बी.एस.जोशी के मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया कि एफ.आई.आर. उन मामलों में भी रद्द किया जा सकता है जहां अपराध गैर-समायोज्य था, जहां पार्टियों ने समझौता कर लिया है और दंड संहिता प्रणाली की धारा 320 के तहत रोक के बावजूद अपने विवादों को सुलझा लिया है।

18.**स्पेशल सेल, नई दिल्ली बनाम नवजोत संधू उर्फ अफशां गुरु और अन्य (5)** [5]के मामलें में **कर्नाटक राज्य बनाम एल मुनिस्वामी और अन्य (6)** व **मधु लिमये का मामला (सुप्रा) और भजन लाल के मामले (सुप्रा)** में व्यक्त विचारों की पुष्टि करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य ने निम्नानुसार देखा: -

"यह तय हो गया है कि उच्च न्यायालय आपराधिक मामलों में न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल मामले में इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति और संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों की भी जांच की। इसमें कहा गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा या तो किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए इन शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ दिशानिर्देश निर्धारित करते समय जहां अदालत इन प्रावधानों के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगी, यह भी कहा गया था कि ये दिशानिर्देश अदालतों द्वारा अपनाए जाने वाले फार्मूले अनम्य या झूठ बोलने वाले नहीं हो सकते। ऐसी शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, लेकिन इसका एकमात्र उद्देश्य किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना या अन्यथा अपने न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करना होगा। ऐसे दिशानिर्देशों में से एक वह है जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य

---

(5)) 2003 (2) आर.सी.आर. (सीआरएल) 860 (एससी)

(6) एआईआर 1977 एस.सी. 1489

पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है। अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अधीक्षण न केवल प्रशासनिक प्रकृति का है बल्कि न्यायिक प्रकृति का भी है। यह अनुच्छेद निचली अदालतों द्वारा कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और यह देखने के लिए कि न्याय प्रशासन की धारा स्वच्छ और शुद्ध बनी रहे, उच्च न्यायालय को व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 और संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग करते समय अधिक सावधानी और उचित देखभाल बरतनी पड़ती है। जब शक्तियों का प्रयोग संहिता के अनुच्छेद 227 या धारा 482 के तहत हो सकता है तो अनुच्छेद 226 के प्रावधानों को लागू करना हमेशा आवश्यक नहीं हो सकता है। इस न्यायालय के कुछ निर्णय उच्च न्यायालय की अनुच्छेद 226 और 227 शक्तियों के प्रयोग के लिए सिद्धांतों को निर्धारित करते हैं जिनका उल्लेख किया जा सकता है।"

19. **आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता में (7)** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ 15 और 16 में अपना आधिपत्य इस प्रकार रखा:-

"15. उक्त निर्णयों से जो कानून के प्रस्ताव सामने आते हैं वे हैं:

1. उच्च न्यायालय आमतौर पर किसी आपराधिक कार्यवाही और विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा जब तक कि उसमें निहित आरोप, भले ही अंकित मूल्य दिया गया हो और पूरी तरह से सही माना गया हो, संज्ञय अपराध प्रकट नहीं करता है।

2. उक्त उद्देश्य के लिए न्यायालय, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, बचाव पक्ष द्वारा भरोसा किए गए किसी भी दस्तावेज़ पर गौर नहीं करेगा।

---

(7) (2009) 1 एस.सी.सी. 516

3. ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित ढंग से किया जाना चाहिए। यदि एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोप किसी अपराध के घटित होने का खुलासा करते हैं उस स्थिति में न्यायालय इससे आगे नहीं जाएगा और अभियुक्त के पक्ष में किसी भी आपराधिक मनःस्थिति या एक्टस रीस की अनुपस्थिति का आदेश पारित नहीं करेगा।

4. यदि आरोप एक दिवानी विवाद का खुलासा करता है, तो यह अपने आप में यह मानने का आधार नहीं हो सकता है कि आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

16. यह भी सर्वविदित है कि कोई भी कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मामले पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। न्यायालय अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए हालांकि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 और 483 के प्रावधान, जो संसद द्वारा पेश किए गए थे, के अभिप्राय और वस्तु को ध्यान में रखते हुए किसी वास्तविक शिकायत में हस्तक्षेप नहीं करेगा जिसके लेकिन इसका प्रयोग उचित मामलों में करने में संकोच नहीं करेगा। उपयुक्त मामलों में इसका अधिकार क्षेत्र। वरिष्ठ न्यायालयों के सर्वोपरि कर्तव्यों में से एक यह देखना है कि जो व्यक्ति स्पष्ट रूप से निर्दोष है उसे झूठी और पूरी तरह से अस्थिर शिकायत के आधार पर उत्पीड़न और अपमान का शिकार नहीं होना चाहिए।"

20. हाल ही में, **महेश चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (8)** [7]में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने फैसले के पैराग्राफ 11 और 14 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"11. किसी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करने का सिद्धांत सर्वविदित है। अन्य बातों के साथ-साथ, आरोपों की स्थिति में न्यायालय सामान्यतः उक्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा जब एफ.आई.आर. या शिकायत याचिका में शामिल बातें, भले ही अंकित मूल्य पर पूरी तरह से सही मानी जाएं, किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करती हैं।

---

(8) (2009) 4 एस.सी.सी. 439

14. ऐसा कहते समय हम इसकी सीमाओं से अनभिज्ञ नहीं हैं कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत न्यायालय की शक्ति मुख्य रूप से या तो किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए है। उस स्तर पर न्यायालय साक्ष्य की सराहना नहीं करेगा। इसके अलावा न्यायालय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर समग्र रूप से विचार करेगा। कमलादेवी अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य में। [(2002) 1 एस.सी.सी. 555 इस न्यायालय ने राय दी: (एस.सी.सी. पृ. 559-60, पैरा 7)

.

"7. इस न्यायालय ने लगातार माना है कि प्रारंभिक चरण में कार्यवाही को रद्द करने की पुनरीक्षण या अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयमित ढंग से किया जाना चाहिए और केवल वहीं किया जाना चाहिए जहां शिकायत या एफ.आई.आर में लगाए गए आरोप, भले ही उनके अंकित मूल्य पर लिए गए हों और संपूर्ण रूप से स्वीकार किए गए हों, किसी अपराध के घटित होने का प्रथम दृष्टया खुलासा नहीं करते हों।विवादित एवं विवादस्पद तथ्यों को क्षेत्राधिकार के प्रयोग का आधार नहीं बनाया जा सकता।"

इसके अलावा यह देखा गया कि उच्च न्यायालय को प्रारंभिक चरण में कार्यवाही में हस्तक्षेप करने में धीमा होना चाहिए और केवल इसलिए कि विवाद की प्रकृति मुख्य रूप से नागरिक प्रकृति की है, आपराधिक मुकदमा रद्द नहीं किया जा सकता क्योंकि जालसाजी और धोखाधड़ी के मामलों में वहां हमेशा नागरिक प्रकृति का कोई न कोई तत्व रहेगा।"

21.उपरोक्त वर्णित कानून के मद्देनजर, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए निश्चित रूप से प्रयोग की जा सकती है।

22. इसलिए, मैं यह देखने के लिए तत्काल मामले और परिणामी सम्मन आदेश के तथ्यों का मूल्यांकन करने के लिए आगे बढ़ता हूं कि ऐसी शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता है या नही।

23. याचिकाकर्ता को जो जिम्मेदार ठहराया गया है वह दृश्य है जो उसने कलर्स टेलीविजन चैनल पर प्रसारित "एक खिलाड़ी एक हसीना" नामक कार्यक्रम में निभाया था। उन पर आरोप है कि उन्होंने आरोपी नंबर 3 मोना सिंह के साथ मिलकर रावण का वेश धारण किया था, मोना सिंह ने सीता का वेश धारण किया था और ऐसे शब्द बोले थे जिन्हें यहां ऊपर दोहराया गया है।

24. अब सवाल यह उठता है कि क्या इस तरह के अनुक्रम को हिंदू धर्म को मानने वाले उत्तरदाताओं की भावनाओं को आहत करने वाला कहा जा सकता है।

25.किसी विशेष कार्य या हावभाव या लिखित अंश या कैरिकेचर या कार्टून का मूल्यांकन करते समय, यह देखने के लिए कि क्या इससे किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचती है, यह ध्यान रखना होगा कि आपत्तिजनक रचना को उसके उचित रूप में देखा और मूल्यांकन किया जाए व उसे परिप्रेक्ष्य और संदर्भ से बाहर नहीं समझा गया।

26.यदि इस मामले के तथ्यों को देखा जाए तो जाहिर तौर पर जो पेश करने की कोशिश की गई थी वह एक हल्का-फुल्का मनोरंजक दृश्य था। इसका उद्देश्य हास्य पैदा करना था और इसे एक पौराणिक स्थिति की पैरोडी के रूप में देखा जाना था। हास्य, जैसा कि वे कहते हैं, गंभीर व्यवसाय है। जो व्यक्ति किसी भी व्यक्ति या स्थिति का व्यंग्य करता है, उसमें अन्यथा गंभीर स्थिति में हास्य उत्पन्न करने की बुद्धि होती है।यह उसकी बुद्धि और रचनात्मकता के कारण है कि वह अन्यथा पछतावे वाली स्थिति का दूसरा पहलू भी देखता है। इसी प्रकार, एक स्पूफ भी एक रचनात्मक दिमाग का मुख्य उत्सव है और पर्यवेक्षक द्वारा इसे समान स्वागत दिया जाना चाहिए। वे केवल इस बात का ध्यान रखते हैं कि इसका परिणाम अश्लीलता न हो जिससे एक औसत दर्शक की संवेदनशीलता को झटका लगे। यह अपेक्षित नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति की संवेदनशीलता को ध्यान में रखा जाए, लेकिन यह बड़े पैमाने पर समाज का दृष्टिकोण है जो निर्धारण कारक है क्योंकि जिस गेज पर इस तरह के विचार का परीक्षण किया जा सकता है वह शून्य से अनंत तक भिन्न होता है और इसलिए, इस तरह के मूल्यांकन के मापदंडों को उस हल्के घर्षण को ध्यान में रखना होगा जो विचार दर्शन या व्यंग्यपूर्ण सत्य विकसित होने पर होता है;

एकमात्र देखभाल यह है कि इस तरह के घर्षण को चमड़े के नीचे के स्तर के भीतर समाहित किया जाना चाहिए और हिंसक या विषैले ढंग से फूटने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

27.एक बहुलवादी समाज, विचार के सर्व समावेशी विकास पर विचार करता है और जिसमें उसका प्रगतिशील विकास शामिल होता है, चाहे वह बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक हो। ऐसी प्रक्रिया, जो कभी स्थिर नहीं होती और हमेशा प्रवाह की स्थिति में रहती है आवश्यक रूप से निरंतर विच्छेदन और प्रसार को आमंत्रित करती है। यह उत्तरोत्तर और अपक्षयी रूप से बढ़ सकता है और इसके बोधक द्वारा उचित रूप से इसका वर्णन किया जा सकता है। लेकिन, यह भी बौद्धिक प्रसार का ही एक हिस्सा है।विचार की ऐसी गतिशीलता को आवश्यक रूप से समाज के सभी घटकों की संवेदनशीलता को ध्यान में रखना होगा परंतु अति-संवेदनशीलता को नहीं क्योंकि यदि इसकी अनुमति दी जाती है तो यह केवल एक अपक्षयी प्रक्रिया को सक्रिय करने की संभावना को विकसित करेगा और अन्यथा विचार की सहज गतिशीलता को अशांत रंग की ओर ले जाएगा। इस प्रकार, विचार की तीव्र सहिष्णुता व पारस्परिक आदर और सम्मान का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण होना चाहिए। भारत के संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (ए) विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की स्पष्ट अभिव्यक्ति है और यह एक प्रगतिशील समाज के सार को रेखांकित करता है जिसके सिद्धांत बहुलवाद पर आधारित हैं और जो विकास के माध्यम के रूप में बुद्धिमान विचार के विकास को महत्व देता है।

28. जिस कृत्य के लिए यहां याचिकाकर्ता को जिम्मेदार ठहराया गया है वह अधिक से अधिक किसी स्थिति का व्यंग्य या पैरोडी या स्पूफ प्रतीत हो सकता है। और इसे इसी तरीक़े से स्वीकार किया जाना चाहिए था न कि इसमें किसी आपराधिकता का आरोप लगाकर।

29.आई.पी.सी. की धारा 298 के प्रावधान जिसके लिए याचिकाकर्ता और अन्य को मुकदमा चलाने के लिए बुलाया गया है, वे इस प्रकार हैं:--

"298. जो कोई, किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के जानबूझकर इरादे से, उस व्यक्ति की सुनवाई में कोई शब्द बोलता है या कोई ध्वनि बनाता है या उस व्यक्ति की दृष्टि में कोई

इशारा करता है या उसकी दृष्टि में कोई वस्तु रखता है व्यक्ति को किसी एक अवधि के लिए कारावास, जिसे एक वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

30.भारतीय दंड संहिता की धारा 298 के तहत गठित होने वाले अपराध के लिए "इरादा' सर्वोपरि कारक है।हर कार्य जो किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाता है धारा के तहत दोषी नही ठहराया जाएगा, बल्कि केवल वह कार्य जो 'किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने और आहत करने का इरादा।' से किया गया है,दंड को आवेदित करता है।

31.यदि याचिकाकर्ता के कृत्य को देखा जाए तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसने किसी भी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के जानबूझकर इरादे से काम किया था और किसी भी स्थिति में, वह केवल एक कार्यक्रम में अभिनय कर रहा था, जो हो सकता था इसे किसी और ने लिखा है, जिसका शिकायत में कोई उल्लेख नहीं है। इसलिए, शिकायत को पढ़ने से यह नहीं पता चलता कि आईपीसी की धारा 298 की सामग्री इसमें शामिल है व संतुष्ट हैं।

32.एक मजिस्ट्रेट, जो सम्मन की प्रक्रिया जारी करता है, को शिकायत की गंभीरता से जांच करने और फिर यह तय करने का गंभीर कर्तव्य सौंपा गया है कि कोई अपराध किया गया है या नहीं। वह आपराधिक प्रक्रिया को हल्के में नहीं ले सकता, जो फिर से एक गंभीर मामला है और किसी व्यक्ति को आपराधिक प्रक्रिया के अधीन कर सकता है। शिकायत की सामग्री की ईमानदारी से जांच करने और फिर उसकी संतुष्टि दर्ज करने का एक कठिन कर्तव्य न्यायालय पर डाला गया है। इसे अनिवार्य रूप से वास्तविक शिकायत और उस शिकायत के बीच अंतर करने में सक्षम होना चाहिए जो प्रचार या सनसनीखेज के रूप में अनुचित लाभ उठाने के लिए छिपी हुई है।

33. मेरी राय में, उत्तरदाताओं द्वारा दायर की गई शिकायत एक तुच्छ शिकायत है और मजिस्ट्रेट को ऐसे आधारहीन आरोपों पर याचिकाकर्ताओं और अन्य लोगों को नहीं बुलाना चाहिए था।

34. उत्तरदाताओं की गंभीरता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि कार्यक्रम के प्रसारण के एक पखवाड़े के भीतर, उन्होंने स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता की माफी स्वीकार कर ली थी और मामले को सुनवाई के लिए रखा गया तब यह तथ्य भी कि उनके वकील याचिका का विरोध करने के लिए उपस्थित भी नहीं हुए थे।

35. उपरोक्त चर्चा के आधार पर याचिका स्वीकार की जाती है।शिकायत,परिशिष्ट पी-1, सम्मन आदेश, परिशिष्ट पी-5 और उससे उत्पन्न होने वाली सभी परिणामी कार्यवाही रद्द कर दी जाती है और उत्तरदाताओं पर रुपये की लागत का बोझ डाला जाता है। एक तुच्छ शिकायत दर्ज करने के लिए 10,000 रु. लागत की राशि दो महीने की अवधि के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष जमा की जाएगी और वह उच्च न्यायालय के 'वकील कल्याण कोष' में जाएगी।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

बेनिका
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी,
(Trainee Judicial Officer),
हरियाणा।